इकाई 11 धार्मिक विचार और आंदोलन–II*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः भक्ति की सहस्राब्दी

11.3 वैष्णव भक्ति, अकबर और मुगल साम्राज्य

11.4 वैष्णव भक्ति का विकास (सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी)

- 11.4.1 रामानन्द के अनुयायी और उनकी सामाजिक, धार्मिक भूमिका
- 11.4.2 ब्रज क्षेत्र में कृष्ण–भक्ति स्थलों की खोज
- 11.4.3 चैतन्य के अनुयायी (गौड़िय सम्प्रदाय)
- 11.4.4 वल्लभाचार्य के अनुयायी (पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय)
- 11.4.5 निम्बार्क सम्प्रदाय
- 11.4.6 राधावल्लभी और हरिदासी सम्प्रदाय
- 11.4.7 मुगल काल के अन्य वैष्णव भक्त
- 11.4.8 मुगल काल की महिला वैष्णव भक्त

11.5 अठारहवीं शताब्दी में वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय का रूपान्तरण

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे किः

- सोलहवीं–अठारहवीं शताब्दी में वैष्णव भक्ति आंदोलन के भीतर विविध धारायें थीं,
- वैष्णव भक्ति धीरे–धीरे उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी पकड़ मजबूत कर रही थी,
- वैष्णव भक्ति और भक्ति दर्शन विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों से जुड़े हुए थे,
- विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों ने प्रभाव, अनुयायियों और राजनैतिक संरक्षण के लिए एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा की।

11.1 प्रस्तावना

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में भारतीय समाज में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की एक जीवंत और गतिशील प्रक्रिया परिलक्षित होती है। सामाजिक

*प्रो. आर. पी. बहुगुणा, इतिहास और संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली।

आर्थिक संरचना अत्यधिक विभेदित थी जिसके एक छोर पर शाही और क्षेत्रीय शासक, अभिजात वर्ग और दूसरे छोर पर निम्नतम् जाति के ग्रामीण मजदूर, वनवासी और पशुपालक थे। यहाँ तक कि कृषकों में भी, हम जाति, वर्ग और पशुचारण गतिविधियों के संदर्भ में विभाजन पाते हैं। इस तरह के विभिन्न सामाजिक गठन के अर्न्तगत विभिन्न समूहों ने अपनी–अपनी धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक रीति–रिवाजों, अनुष्ठानों, राजनीतिक अनुभूतियों आदि को अपनाया। इस्लाम के आगमन और पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम समुदायों के विकास ने पहले से मौजूद विविधता में वृद्धि की। तेरहवीं शताब्दी में तुर्की शासन की स्थापना और विस्तार के बाद दूरगामी सामाजिक–आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन हुए लेकिन जाति आधारित पदानुक्रम बरकरार रहे। विभिन्न समुदायों के बीच धार्मिक अन्तःक्रिया की प्रक्रिया, पारस्परिक सामन्जस्य, विनियोग, प्रतिस्पर्धा और कभी–कभी टकराव द्वारा भी चिन्हित थी। इन परिस्थितियों में विभिन्न भक्ति आधारित आन्दोलनों ने समाज के धार्मिक रुझान को पुनः परिभाषित करने और नई विचार धाराओं और राजनैतिक अनुभूतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में इस्लाम में उभरती प्रवृतियों की भूमिका और प्रभाव पर पिछली इकाई में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। वर्तमान इकाई का केन्द्र बिंदु वैष्णव भक्ति के जीवंत विकास की कहानी का पता लगाना और छात्रों को उस घटनाक्रम से परिचित कराना है, जिसने सोलहवीं शताब्दी के मध्य और अठारहवीं शताब्दी के मध्य की अवधि के दौरान इन रूपान्तरणों को आकार दिया।

11.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः भक्ति की सहस्राब्दी

भारत के इतिहास में सातवीं–आठवीं शताब्दी से सत्रहवीं–अठारहवीं शताब्दी तक एक हजार वर्ष की अवधि को 'भक्ति की सहस्राब्दी' कहा गया है। इन शताब्दियों के दौरान भारत के धार्मिक और सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से एक भक्ति आधारित वैष्णव, शैव और सन्त आंदोलनों का उदय और विकास रहा है। **बी एच आई सी 107** में, आपने पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त और सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत में संतवादी और वैष्णव भक्ति आंदोलनों के उदय और विकास के बारे में विस्तार से पढ़ा। आप जानते हैं कि कैसे भक्ति की उत्पति को एक व्यक्तिगत ईश्वर के प्रति सर्वोच्च भक्ति पर आधारित विचार के रूप में उपनिषदों, गीता, रामायण और प्रारंभिक काल के अन्य धार्मिक ग्रन्थों से रेखांकित किया जा सकता है। लेकिन प्रारंभिक मध्यकालीन दक्षिण भारत के तमिल भाषा क्षेत्रों में भक्ति पहली बार एक सामाजिक धार्मिक आन्दोलन के रूप में उभरी, जो महिलाओं सहित आम लोगों की भक्ति भावनाओं और अभिव्यक्तियों पर आधारित थी। छठी से नौवीं शताब्दी के वैष्णव अलवार और शैव नयनारों ने भक्ति को सभी सामाजिक समूहों के बीच लोकप्रिय बना दिया। भागवत पुराण, जो संभवतः नौवीं–दसवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में रचा गया था, ने कर्मकांडवाद पर भक्ति को मुक्ति के साधन के रूप में स्थापित किया। इस ग्रन्थ के दसवें अध्याय में भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण के जन्म, बचपन और किशोरावस्था की कहानियाँ हैं। बाद की शताब्दियों में, भागवत पुराण भक्ति नयनार के युग के बाद दक्षिण भारतीय घुमक्कड़ विद्वानों और दार्शनिकों की एक श्रृंखला शुरू हुई, जिन्हें आचार्य कहा जाता था और जिन्होंने ग्यारहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी के बीच वैष्णव भक्ति को सामाजिक रूप से समावेशी पूजा के रूप में प्रचारित किया और उसका पक्ष लिया। उनमें सबसे प्रमुख रामानुज (ग्यारहवीं शताब्दी) माधवाचार्य (13वीं शताब्दी), और निम्बार्काचार्य (13वीं शताब्दी) थे। इस परंपरा में अन्तिम धार्मिक शिक्षक वल्लभाचार्य (1479–1531) थे, जिन्होंने दिल्ली सल्तनत के अन्तिम चरण के दौरान उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति को लोकाप्रिय बनाया। इस बीच, एक

लोकप्रिय समतावादी और गैर–ब्राह्मणवादी शैवभक्ति आन्दोलन, जिसे वीरशैव कहा जाता है, कर्नाटक में बारहवीं शताब्दी में बसव के नेतृत्व में उभरा। बारहवीं शताब्दी की प्रसिद्ध महिला भक्त अक्का महादेवी सहित बसव और अन्य वीरशैव भक्तों ने कन्नड़ (वचन) में लोकप्रिय भक्ति गीतों की रचना की। एक अन्य महिला भक्त लालडेड ने चौदहवीं शताब्दी में कश्मीर में सामाजिक रूप से उग्र शैव भक्ति का प्रचार किया। महाराष्ट्र में, तेरहवीं शताब्दी में ज्ञानेश्वर और चौदहवीं शताब्दी में नामदेव को वैष्णव भक्ति के प्रारंभिक प्रचारक के रूप में माना जाता है, लेकिन सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में वारकरी आन्दोलन का पूर्ण विकास हुआ। पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त में और सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत में, विशेषरूप से उत्तर भारत में विभिन्न रूपों में भक्ति का अभूतपूर्व प्रवाह देखा गया। जैसा कि **बी एच आई सी–107** में चर्चा की गई है कि सल्तनत काल के अन्त में और प्रारंभिक मुगलकाल के भक्ति आधारित धार्मिक आन्दोलनों में देश के विभिन्न भागों में भक्ति की पहले की अभिव्यक्तियों के साथ केवल सतही समानताएँ थीं। इन आन्दोलनों के विकास, लोकप्रियता और प्रभाव को, विशेष रूप से कबीर और अन्य निम्न जाति के भक्तों से जुड़े एकेश्वरवादी संत आंदोलन के प्रभाव को तेरहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी के बीच की अवधि में उत्तर भारत में हुए दूरगामी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से अलग करके नहीं समझा जा सकता है।

11.3 वैष्णव भक्तिः अकबर और मुगल साम्राज्य

सल्तनत काल के अन्तिम दौर के दौरान वैष्णव भक्ति के महान प्रचारकों जैसे रामानन्द, वल्लभाचार्य, चैतन्य और उनके शिष्यों और उत्तराधिकारियों ने उत्तर भारत के विभिन्न हिस्सों में वैष्णव भक्ति के एक विशाल संजाल की नींव रखी। मुगल काल के दौरान लिखे गये संतचरित वृत्तांतों भक्तमाल, चरित और वार्ताओं ने वैष्णव भक्ति को सभी दिशाओं में फैलाने में इन अग्रणीय हस्तियों के असाधारण प्रयासों का वर्णन किया। आधुनिक इतिहासकारों ने भी विभिन्न क्षेत्रों और सभी सामाजिक समूहों के बीच रामभक्ति और कृष्ण भक्ति के विकास में संस्थापक आचार्यों – महाप्रभुओं और गोस्वामियों के मौलिक योगदान पर प्रकाश डाला है। सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत में वैष्णव शिक्षकों और खोजकर्ताओं ने भागवत पुराण में वर्णित वैष्णव स्थलों की कैसे फिर से खोज की और तीर्थ स्थलों और मठों की स्थापना की, इसके बारे में भी आकर्षक वृत्तांत हैं। हालांकि, एक बड़े, केन्द्रीकृत और मजबूत राजनीतिक इकाई के रूप में मुगल साम्राज्य का उदय और मुगल सम्राटों, विशेष रूप से अकबर, और उनके राजपूत कुलीनों द्वारा वैष्णव संस्थाओं को दिया गया संरक्षण भी वैष्णव भक्ति के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदायी कारक थे। अखिल भारतीय साम्राज्य के गठन ने क्षेत्रीय संगीतकारों, यात्रियों, व्यापारियों, तीर्थ यात्रियों और वैष्णव प्रचारकों के माध्यम से भक्ति प्रचार के धार्मिक विचारों और उनके बारे में किवदंतियों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रसार की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया। यह प्रक्रिया भले ही अकबर के पूर्वकाल में शुरू हुई हो, लेकिन सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसने गति पकड़ी। मुगल शासन ने धार्मिक मामलों में उल्लेखनीय लचीलेपन और सहिष्णुता को दर्शाया, जिसने कई नए धार्मिक समूहों को कम से कम तब तक फलने–फूलने दिया, जब तक कि वे राज्य को स्वयं के लिए राजनैतिक खतरा नहीं लगते थे। कछवाहा राजपूत अकबर के अर्न्तगत मुगल साम्राज्य के प्रमुख कुलीनजन थे, और मुगल–कछवाहा संबंध ने मुगल साम्राज्य के क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में वैष्णव भक्ति के विकास में योगदान दिया। सत्रहवीं–अठारहवीं शताब्दी के वैष्णव संतचरित संबंधी वर्णन समकालीन शासकों, अकबर

और राजपूत दोनों, और वृहत क्षेत्र के वैष्णव अभिजात वर्ग के बीच घनिष्ट संबंधों पर प्रकाश डालते हैं। विभिन्न वैष्णव समुदायों के प्रतिनिधियों के साथ अकबर, मानसिंह और अन्य राजपूत सरदारों की अन्तःक्रिया ने वैष्णव संतचरित लेखन में उसके अवशोषण की सुविधा प्रदान की।

मुगलकाल के राजस्व दस्तावेज अपने क्षेत्र के दो सबसे प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों, गौड़िय (चैतन्य के अनुयायी) और पुष्टिमार्गी (वल्लभाचार्य के अनुयायी) और अकबर और उनके राजपूत दरबारियों के बीच घनिष्ट संबंधों के अस्तित्व की गवाही देते हैं। जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान मथुरा–वृन्दावन क्षेत्र के वैष्णव मन्दिरों को मुगल सम्राटों का संरक्षण जारी रहा। औरंगजेब ने 1670 में मथुरा के केशवराय (भगवान कृष्ण) के मन्दिर को ध्वस्त करने का आदेश दिया और 1672–73 में हिन्दु पुजारियों और मन्दिरों द्वारा प्राप्त सभी राजस्व अनुदानों को बन्द करने के लिए एक सामान्य आदेश जारी किया। इन कदमों से ब्रज मन्दिरों के पुजारियों में बहुत बैचेनी हुई लेकिन, वास्तविक व्यवहार में, मथुरा–वृन्दावन मंदिरों और उनके संरक्षकों को जारी किये गये भू–राजस्व अनुदानों की औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों के अर्न्तगत बार–बार पुष्टि की गई। ब्रज आधारित वैष्णववाद के प्रख्यात विद्वान प्रभुदयाल मीतल के अनुसार यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि अकबर का शासन काल ब्रज आधारित वैष्णव भक्ति का 'स्वर्ण युग' था। यद्यपि ब्रज क्षेत्र के अधिकांश पवित्र स्थलों की पहचान सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में की जा चुकी थी, फिर भी वैष्णव सम्प्रदायों का विकास और प्रभाव अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य के विस्तार और सुदृढ़ीकरण के साथ हुआ।

अपने धर्म का प्रचार करने के लिए वैष्णव प्रचारकों के सफल प्रयासों और उनके प्रतिष्ठानों के मुगल राजपूत संरक्षण के परिणाम स्वरूप चैतन्य सम्प्रदाय और पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय दोनों के संसाधनों, प्रतिष्ठा और प्रभाव में वृद्धि हुई। जीवा गोस्वामी और विट्ठलनाथ के नेतृत्व में गौड़िय और पुष्टमार्गी क्रमशः अकबर और राजपूत सरदारों द्वारा दिये गये संरक्षण से लाभान्वित हुए। इन विकासों ने, परिणामस्वरूप, ब्रज क्षेत्र में कृष्ण–भक्ति की बढ़ती लोकप्रियता को जन्म दिया। ब्रज–मुगल साम्राज्य के केन्द्रीय स्थल का एक भाग – उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति तीर्थ यात्रा का केन्द्र बन गया।

बोध प्रश्न 1

1) सोलहवीं शताब्दी से पहले भारत में भक्ति आधारित आंदोलनों के विकास पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) मुगलों और वैष्णव मन्दिरों और उपदेशकों के बीच संबंधों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

11.4 वैष्णव भक्ति का विकास (सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी)

11.4.1 रामानन्द के अनुयायी और उनकी सामाजिक–धार्मिक भूमिका

बी एच आई सी–107 में, आप पहले ही रामानन्द और राम–भक्ति के निर्गुणी और सगुणी रूपों के विकास में उनके योगदान के बारे में पढ़ चुके हैं। परंपरा के अनुसार, उन्होंने लोगों को अपने शिष्य के रूप में दीक्षा देते हुए जाति, पंथ और जेन्डर के आधार पर कोई भेद नहीं किया। सगुणी रामभक्ति परंपरा में, रामानन्द के एक ब्राह्मण शिष्य अनन्तानंद उनके उत्तराधिकारी बने। सोलहवीं शताब्दी की शुरूआत में, अनन्तानंद के उत्तराधिकारी कृष्णदास पायोहरि ने मठों की स्थापना और राजपूत सरदारों को वैष्णववाद में परिवर्तित करने का कार्य शुरू किया। कृष्णदास पायोहरि का सबसे बड़ा योगदान राजा पृथ्वीराज (शासन 1503–27) के शासन काल के दौरान आमेर के कछवाहा शासकों के क्षेत्र में गाल्टा के मठ से नाथपंथी जोगियों को बाहर करना और इसे वैष्णव केन्द्र के रूप में स्थापित करना था। एक और वैष्णव मठ की स्थापना कछवाहा राज्य में, सीकर के पास रायवाला में, अग्रदास द्वारा की गई थी, जो कृष्णदास पायोहरि के उत्तराधिकारी और अकबर और राजा मानसिंह के समकालीन थे। अकबर के शासनकाल के अन्तिम दशकों के दौरान दो प्रसिद्ध वैष्णव संत चरित्र लेखक–नाभादास और अनन्त दास क्रमशः गाल्टा और रायवाला मठों में रहते थे। जहाँ नाभदास ने प्रसिद्ध *भक्तमाल* की रचना की, वहीं अनन्त दास ने कबीर और अन्य निम्न जाति के संतों की *परचई* की रचना की। अन्य मठों की स्थापना रामानन्द के अनुयायियों द्वारा चित्रकूट, मिथिला और अन्य स्थानों पर सोलहवीं शताब्दी में की गई थी। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक, मठों ने एक संगठनात्मक ढाँचा विकसित कर लिया था, जिसका नेतृत्व ब्रह्मचारी ब्राह्मण भिक्षु करते थे, लेकिन ये मठ किसानों, कारीगरों और महिलाओं जैसे साधारण अनुयायियों के लिए खुले रहे। उनमें से अनेक कबीर और अन्य निम्न जाति के संतों के अनुयायी भी थे। इस प्रकार यह कहना गलत नहीं होगा कि रामानंद के अनुयायियों ने सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान उत्तर भारत में 'एक छोटी सामाजिक क्रांति' ला दी। वे किसी संगठित, स्थाई और पदानुक्रमित धार्मिक व्यवस्था का हिस्सा नहीं थे। वे उत्तर भारत के कस्बों, गाँवों, मठों और तीर्थ केन्द्रों में रहते थे और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में और एक गैर–ब्राह्मणवादी धार्मिक बिरादरी से दूसरी में चले जाते थे। सत्रहवीं शताब्दी में, रामानन्द और कबीर के इन निम्न जाति के अनुयायियों को विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न नाम – जैसे बैरागी, मुंडिया, साध और सतनामी प्राप्त किये। उनमें से कुछ ने शैव तपस्वियों, जिन्हें वे अपना प्रतिद्वन्द्वी मानते थे, के विरूद्ध और राज्य के विरूद्ध स्वयं को हथियार–बंद किया।

11.4.2 ब्रज–क्षेत्र में कृष्ण–भक्ति स्थलों की खोज

विभिन्न क्षेत्रों के वैष्णव प्रचारक, कृष्ण–भक्ति के विभिन्न तरीकों के साथ सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत से उत्तर भारत के ब्रज क्षेत्र में आने लगे। इन प्रचारकों के आगमन के समय, मथुरा में एक कृष्ण मन्दिर था, लेकिन कुल मिलाकर, इस क्षेत्र के लोगों के धार्मिक जीवन में शैव और शाक्त सम्प्रदायों का प्रभुत्व था। इस क्षेत्र में ग्रामीण और चरवाहा समुदाय प्रकृति पूजा के विभिन्न रूपों, और यक्ष और नागा पंथों में विश्वास करते थे। हालांकि, प्रारंभिक वैष्णव खोजकर्ताओं और अधिवासियों का लक्ष्य खोये हुए लीला स्थलों या कृष्ण के बचपन और किशोरावस्था से जुड़े स्थानों को फिर से तलाशना था, जिनका वर्णन भागवत पुराण और अन्य

वैष्णव ग्रन्थों में था। इन स्थलों में स्थान, वन, वृक्ष, चट्टान, परिक्रमा स्थल और ब्रज में कृष्ण पूजा के अन्य प्रतीक शामिल थे। विभिन्न वैष्णव समुदायों के संतचरित्रों में इस बात का विवरण है कि कैसे करिश्माई नेताओं ने स्वप्न और दिव्य दर्शन के प्रभाव में ब्रज मंडल के खोये हुए स्थलों को खोजा और पहचाना।

पहले वैष्णव उपदेशक, जो सोलहवीं शताब्दी की शुरूआत में ब्रज पहुँचे और गोवर्धन पहाड़ी पर 'गोपाल' के रूप में संदर्भित देवता की पूजा शुरू की, वह माधवेन्द्रपुरी थे। वल्लभाचार्य और पहले दो चैतन्य गोस्वामी, रूप और सनातन, ने माधवेन्द्रपुरी से पदभार संभाला और स्थलों की खोज और उनके नामकरण की प्रक्रिया को गति दी। वल्लभाचार्य ने एक मन्दिर में श्रीनाथ जी (भगवान कृष्ण) की प्रतिमा स्थापित की। सत्रहवीं शताब्दी के पुष्टिमार्गी संत चरित्र लेखक श्रीनाथजी के प्रकट होने की कहानी का विवरण देते हैं। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, वल्लभाचार्य के पुत्र और उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ ने गोकुल के स्थल को पुष्टिमार्ग के मुख्य केन्द्र के रूप में विकसित किया। इसी तरह गौड़िय संतचरित्र लेखक चैतन्य और उनके शिष्यों के बारे में कहानियां बताते हैं, जो ब्रज में अन्य कृष्ण से जुड़े स्थलों के ढूंढ़ने के बारे में हैं।

कृष्ण के जीवन के स्थानों का पता लगाने के प्रयासों में महत्वपूर्ण योगदान कर्ताओं में एक दक्षिण भारत के चैतन्य विद्वान, प्रसिद्ध *ब्रजभक्ति विलास* के लेखक नारायण भट्ट थे। 1531 में जन्में, वे 1545 में ब्रज क्षेत्र में आए और गोवर्धन पर्वत के पास के क्षेत्र में बस गये। *ब्रज भक्ति विलास* को ब्रज क्षेत्र के पवित्र भूगोल पर सबसे बड़ी रचना बताते हुए, जॉन स्ट्रेटन हॉले का अवलोकन है कि यह एक ''उल्लेखनीय ग्रन्थ है, जो ब्रज के ग्रामीण अंचलों में प्रत्येक बोधगम्य वन, कुंज या किले को सूचीबद्ध करता है, प्रत्येक को एक देवता या कृष्ण के जीवन के चरित्र से जोड़ता है, और संभावित आगन्तुकों को प्रत्येक स्थान पर बोले जाने वाले मंत्र और इस तरह के उच्चारण के लिए उत्तम समय के बारे में निर्देश देता है''। (*ए स्ट्रोम ऑफ सॉंग्सः इंडिया एंड द आइडिया ऑफ द भक्ति मूवमेंन्ट*, हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज 2015, पृष्ठ 162)। कृष्ण भक्ति के विभिन्न तरीकों के उपदेशकों और अनुयायियों ने ब्रज को अपना घर बना लिया और वृन्दावन और क्षेत्र के अन्य स्थानों में अपने मन्दिरों, धार्मिक केन्द्रों, संस्थाओं और संगठनों की स्थापना की। इस प्रकार ब्रज, और विशेषरूप से वृन्दावन, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान कृष्ण भक्ति के एक जीवतं केन्द्र के रूप में उभरा। ब्रजस्थलों की खोज गौड़िय और पुष्टमार्गीय द्वारा पेश किए गए सम्प्रदाय से जुड़े दावों और प्रतिदावों में भी परिलक्षित होती थीं। ब्रजक्षेत्र के दो प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों के सम्प्रदाय संबंधी इतिहासों का दावा है कि उनके अपने संबंधित संस्थापकों और 'खोजकर्त्ताओं' ने स्थलों को फिर से खोजने में अग्रणीय भूमिका निभाई थी।

11.4.3 चैतन्य के अनुयायी (गौड़िय सम्प्रदाय)

पूर्वी भारत और वृन्दावन में वैष्णव भक्ति के प्रसार में चैतन्य (1486–1533) की भूमिका और महत्व की व्याख्या की गई हैं। चैतन्य के अनुयायियों के समुदाय को गौड़िय सम्प्रदाय कहा जाता है। चैतन्य और उनके अनुयायियों ने दिव्य प्रेमियों के जोड़े, राधा–कृष्ण भक्ति के पंथ का अभ्यास किया। चैतन्य ने भक्ति के मार्धुय रूप को प्रतिपादित किया, जिसमें भक्त भगवान से अपने सहचारी के रूप में सम्पर्क करता था। जब चैतन्य के अनुयायी ब्रज पहुँचे तब तक निम्बार्क वृन्दावन में स्वयं को स्थापित कर चुके थे। निम्बार्क के अनुयायी कृष्ण–राधा पंथ के उपासक थे, लेकिन उन्होंने अपनी भक्ति के तरीके में राधा को कृष्ण से ऊपर रखा। वृन्दावन

में कृष्ण–भक्ति के लगभग दो समान रूपों के एक साथ विकसित होने के कारण गौड़ियों ने जल्द ही स्वयं को निम्बार्कीयों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए पाया। सोलहवीं शताब्दी में वृन्दावन में पवित्र स्थलों को उजागर करने और गौड़िय भक्ति की धार्मिक नींव रखने और संगठन बनाने का कार्य छः प्रसिद्ध गोस्वामियों के एक समूह द्वारा किया गया था। वृन्दावन के छः गोस्वामियों में दो भाई रूप और सनातन, उनके भतीजे जीव गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, गोपाल भट्ट गोस्वामी और रघु नाथ दास गोस्वामी थे।

सोलहवीं शताब्दी में छः गोस्वामियों के धार्मिक नेतृत्व में वृन्दावन का मन्दिर शहर धीरे–धीरे आकार में बढ़ता गया। गोपाल भट्ट गोस्वामी को छोड़कर जो एक गृहस्थ थे अन्य गौड़िय गोस्वामी ब्रह्मचारी उपदेशक थे। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, वृन्दावन में गौड़िय सम्प्रदाय के सबसे प्रमुख धार्मिक नेता जीव गोस्वामी थे जो अकबर के समकालीन थे। जीव गोस्वामी के प्रभाव में वृद्धि और वृन्दावन में गौड़िय समुदाय की गतिविधियों पर उनकी बढ़ती पकड़, अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण और गौड़िय प्रतिष्ठान को अनुदान जारी करने की प्रक्रिया की शुरूआत के साथ हुई। जीव गोस्वामी के बढ़ते आध्यात्मिक और भक्तिवादी प्रभाव ने सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बड़ी संख्या में वैष्णव भक्तों को वृन्दावन में आकर्षित किया।

जीव गोस्वामी और स्वामी हरिदास से मिलने के लिए वृन्दावन में अकबर के आगमन के संतचरित्र वर्त्तातं मिलते हैं। राजा मानसिंह, अकबर के प्रमुख कुलीनों में से एक और आमेर की कछवाहा रियायत के शासक सरदार ने गौड़िय वैष्णव प्रतिष्ठानों को संरक्षण दिया। वृन्दावन में गोविन्द देव जी मन्दिर का निर्माण उनके द्वारा किया गया था। वृन्दावन में मूल गोविन्द देव जी मन्दिर का निर्माण रूप गोस्वामी ने 1535 में वृन्दावन के केन्द्र में किया था। गोविन्द देवजी का मन्दिर जैसे यह सोलहवीं शताब्दी में विकसित हुआ, इसका गौड़िय सम्प्रदाय के ब्रह्मणडीय धर्मशास्त्र में एक महत्वपूर्ण स्थान था। वृन्दावन में गौड़िय सम्प्रदाय के गोस्वामियों और धर्म शास्त्रियों से निकटता ने कछवाहा और अन्य राजपूत सरदारों और धनी व्यापारियों को वृन्दावन और मथुरा में मन्दिरों और अन्य धार्मिक संरचनाओं के निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया।

11.4.4 वल्लभाचार्य के अनुयायी (पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय)

पुष्टिमार्ग (अनुग्रह का मार्ग) के संस्थापक वल्लभाचार्य (1479–1531) ने वात्सल्य भक्ति का प्रचार किया, जो बालकृष्ण के प्रति समर्पण पर केन्द्रित थी, जो एक चरवाहों के देवता थे जिनके बारे में माना जाता था कि उन्होंने अपना बाल्यकाल गोकुल और उसके इर्द–गिर्द के क्षेत्र में बिताया था। जबकि गौड़ियों ने वृन्दावन को आबाद किया, वल्लभियों ने गोकुल–महाबन गोवर्धन क्षेत्र में अपने मन्दिरों की स्थापना की। वल्लभाचार्य ने देश के विभिन्न हिस्सों की यात्रा की और प्रसिद्ध तीर्थस्थलों का दौरा किया। कहा जाता है कि भारत की अपनी तीन तीर्थयात्राओं के दौरान, उन्होंने इन स्थानों पर चौरासी बैठक या पुष्टिमार्ग की गद्दियों की स्थापना की थी। प्रारंभिक गौड़िय वैष्णव धर्म शास्त्रियों और वृन्दावन के उपदेशकों के विपरीत, वल्लभाचार्य के समय से पुष्टिमार्गी नेता गृहस्थ थे और परिवारों का लालन–पालन करते थे। पुष्टिमार्गी विश्व दृष्टिकोण में, वैष्णव भक्त के लिए गृहस्थ जीवन का उचित तरीका था। जैसे–जैसे गोकुल का धार्मिक महत्व बढ़ता गया, वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित नई वैष्णव भक्ति का आकार बढ़ता गया। चार वैष्णव श्रेणियों (चतुह सम्प्रदाय) का विचार सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी के उत्तर भारत वैष्णवों के बीच प्रभावशील हो गया। उत्तर भारत के भक्ति आधारित

वैष्णव समुदाय स्वयं को चार सम्प्रदायों में से एक या दूसरे के अभिन्न अंग के रूप में देखने लगे। इसलिए पुष्टिमार्गीयों ने स्वयं को विष्णुस्वामी सम्प्रदाय से जोड़कर यह दावा किया कि वल्लभाचार्य विष्णु स्वामी की आध्यात्मिक वंशावली से संबंध रखते थे।

सोलहवीं शताब्दी के दौरान पुष्टिमार्गीयों और गौड़ियों के बीच पारस्परिक संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उन्होंने ब्रज स्थलों की पुनः खोज के संबंध में एक दूसरे के दावों का विरोध किया। उन्होंने मुगल और राजपूत शासकों के संरक्षण के लिए एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा भी की। इसके अलावा, दोनों समुदायों का सम्प्रदाय संबंधी साहित्य यह स्पष्ट करता है कि उन्होंने संसाधनों और शिष्यों के लिए होड़ की। मन्दिरों के प्रबंधन और नियंत्रण के मुद्दे पर मतभेदों से भी दोनों सम्प्रदायों के बीच संबंध खराब हो गये थे। सत्रहवीं शताब्दी का एक पुष्टमार्गी संतचरित्र है, *चौरासी वैष्णव की वार्ता* के प्रसिद्ध प्रकरण कृष्णदास अधिकारी वाले में, हिन्दु मुगल कुलीनों के मध्य भी मुद्दे पर बहस और झड़प हो जाती थी। गौड़ियों और पुष्टमार्गीयों के बीच आपसी विवाद और ईर्ष्या सत्रहवीं के दौरान जारी रही और बाद में राजपूत राज्यों में इनकी नई स्थापित शाखाओं में स्थानान्तरित हो गई।

पुष्टिमार्गी वैष्णव भक्ति के विकास के प्रारंभिक चरण में, कृष्ण (श्री नाथ जी) की पूजा की विधि सरल अनुष्ठानों में परिलक्षित होती थी। हालांकि, सोलहवीं शताब्दी के अंत और सत्रहवीं शताब्दी में विस्तृत और अत्यन्त अपव्ययी अनुष्ठान विकसित हुए और बड़े मन्दिरों का निर्माण शुरू हुआ। इन विकासों के लिए धनी भक्तों से अनुदान और संरक्षण दोनों की आवश्यकता थी, जिसने परिणामस्वरूप पुष्टिमार्गी गोसाइयों को शासक, अभिजात वर्ग और धनी व्यापारियों के साथ घनिष्ट संबंध स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। पुष्टिमार्गी संतचरित्र वृत्तांतों से यह स्पष्ट होता है कि जबकि वल्लभाचार्य और उनके पुत्र और उनके उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ के अनुयायी बड़ी संख्या में गरीब और निम्न जाति के भक्त और महिलाएं थीं, अनेक प्रमुख पुष्टिमार्गी अनुयायी उच्च वर्गों और वाणिज्यिक समुदायों से आए थे। पुष्टिमार्गी पुजारियों और उपदेशकों ने उत्तर भारत और गुजरात के गाँव और कस्बों में धनी संरक्षकों की तलाश में दूर–दूर तक यात्रा की, ताकि दैनिक आधार पर किये जाने वाले अलंकृत और सजावटी अनुष्ठानों को बनाए रखने के लिए संसाधन जुटाए जा सकें। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त से, राजदूत राजाओं और उनके कुलीनों के प्रत्यक्ष संरक्षण के तहत राजस्थान के विभिन्न भागों में पुष्टिमार्ग की गद्दियों और मन्दिरों की स्थापना की जाने लगी और देवता की पूजा के रूप और भी अधिक कर्मकांडीय हो गये। महाराणा जगत सिंह (शासनकाल 1628–1652) के शासन काल तक, प्रतीत होता है कि मेवाड़ के सिसोदिया राजपूत राजाओं ने पुष्टिमार्गी मन्दिरों को संरक्षण देने में ज्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाई। हालांकि, महाराणा जगत सिंह और उनके उत्तराधिकारी, महाराणा राज सिंह, (शासन काल 1652–80) की बढ़ती रुचि के कारण, पुष्टिमार्ग की गतिविधियों में, मेवाड़ में कृष्ण पूजा के लिए समर्पित मन्दिरों का निर्माण शुरू हुआ। मन्दिरों के विध्वंस के संबंध में औरंगजेब के आदेश के विरोध में, श्रीनाथ जी की प्रमुख प्रतिमा (स्वरूप) को 1670 में गोकुल से स्थानांतरित कर दिया गया और अन्त में मेवाड़ क्षेत्र के सिहंड गांव में एक मन्दिर में स्थापित किया गया। यह स्थान अठारहवीं शताब्दी में श्रीनाथद्वारा के प्रसिद्ध मन्दिर के रूप में विकसित हुआ। ना केवल मेवाड़ राजाओं बल्कि अन्य राजपूत शासकों ने भी राजस्व संसाधन प्रदान किये और नाथद्वारा मन्दिर को दान दिये।

11.4.5 निम्बार्क सम्प्रदाय

निम्बार्क, भक्ति दर्शन के द्वैव अद्वैत (द्वैतवाद–सह–अद्वैतवाद) मत के संस्थापक संभवतः तेरहवीं शताब्दी में रहते थे। बाद में निम्बार्क अनुयायियों को उत्तर भारत में सतकारी सम्प्रदाय

कहा जाने लगा। सोलहवीं शताब्दी से उनके बारे में संतचरित्र वृत्तांत उभरने लगे, जिन्होंने तेलुगू देश में या वृन्दावन में उनके जन्म स्थान को स्थित माना। यह दर्शाने के लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं हैं कि निम्बार्क और उनके अनुयायी पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त से पहले ब्रज क्षेत्र में बस गये थे। केशव कश्मीरी भट्ट उत्तर भारत में भक्ति के इस मत के पहले महत्वपूर्ण उपदेशक थे। वह सोलहवीं शताब्दी की शुरूआत में ब्रज आए और उन्होंने भक्ति के निम्बार्क मत के सिद्धांतों का प्रचार किया। इस परंपरा के एक और सोलहवीं शताब्दी के उपदेशक श्री भट्ट थे, जिन्होंने क्षेत्र के वैष्णव समुदायों के बीच कृष्ण और राधा के बीच देवीय संबंधों की विषय–वस्तु को लोकप्रिय बनाने के लिए ब्रजभाषा में लिखा था। लेकिन यह श्री भट्ट के शिष्य हरिव्यास देवाचार्य थे, जिन्होंने सोलहवीं शताब्दी के दौरान निम्बार्की परंपरा की वैष्णव भक्ति के संगठनात्मक और धार्मिक विकास पर एक गहरा प्रभाव डाला। निम्बार्कियों को हरिव्यासी भी कहा जाता है। इसके विकास के प्रारंभिक चरणों में, निम्बार्की उपदेशकों ने तपस्चर्यावाद पर जोर दिया, हालांकि इसकी पंक्तियों में गृहस्थों को भी शामिल किया गया था। हरिव्यास देवाचार्य ने गृहस्थ आचार्यों (जो बाद में गोस्वामी कहलाए और धनी हो गए) को नए सदस्यों को दीक्षा देने का अधिकार दिया और यह अधिकार उनके पुरूष वंशजों को विरासत में मिला।

11.4.6 राधावल्लभी और हरिदासी सम्प्रदाय

वृन्दावन में राधा वल्लभी सम्प्रदाय के संस्थापक हित हरिवंश (1502–1552) ने देवता राधा वल्लभ के प्रति समर्पण और राधा को सर्वोच्च सत्ता मानने पर जोर दिया। इस समुदाय के अनुयायी तपस्वियों के रूप की बजाय गृहस्थ के रूप में रहना पसंद करते थे। हितहरिवंश और उनके अनुयायियों ने दार्शनिक बहसों में ज्यादा दिलचस्पी नहीं ली और राधा कृष्ण की निकुंज लीला के सौन्दर्य आनन्द पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया। ओरठ के हरिराम ब्यास, एक वैष्णव भक्त, जो 1530 या 1540 के दशक में ब्रज में बस गये थे, माना जाता है कि वे राधावल्लभियों से जुड़े थे। वृन्दावन के हरिदासी सम्प्रदाय का नाम संगीतकार संत हरिदास के नाम पर रखा गया था। वह हितहरिवंश के समकालीन थे। राधा–वल्लभियों की तरह, हरिदासियों ने भी राधा और कृष्ण के दिव्य प्रेम क्रीड़ा का वर्णन करते कविताएं गाई। इस वैष्णव समुदाय को सखी सम्प्रदाय भी कहा जाता था, क्योंकि इसके अनुयायियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे राधा की सखियों को अपने आध्यात्मिक जीवन के लिये आदर्श प्रतिमान के रूप में देखें। इस अवधि के दौरान वृन्दावन में हरिवंश, हरिराम व्यास और हरिदास ने 'हरित्रई' (हरितिकड़ी) का गठन किया।

11.4.7 मुगलकाल के अन्य वैष्णव भक्त

'वैष्णव' शब्द में बड़ी संख्या में आकारहीन समूह और व्यक्तिगत भक्त शामिल थे जो पहले किसी भी स्थापित वैष्णव सम्प्रदाय से नहीं जुड़े थे। बड़ी संख्या में भक्ति के भक्त, जो अच्छी तरह से परिभाषित और संतचरित्र वैष्णव सम्प्रदाय का हिस्सा नहीं थे, वे भी स्वयं को वैष्णव या बैरागी के रूप में देखते थे। बैरागियों जैसे इन सामाजिक रूप से प्रति आधिपत्य वाले समूहों की एक बड़ी संख्या ने जाति, जेन्डर, संप्रदाय और धर्म के पदानुक्रमों को उलट दिया, और इस कारण से, शासकों और सम्प्रदाय से जुड़े वैष्णव नेताओं ने उन्हें हेय दृष्टि से देखा। उन्होंने निर्गुणी और सगुणी भक्तों के बीच भेद को नहीं माना और केवल अतीत के महान भक्ति के उपासकों को सामाजिक और जेन्डर–आधारित असमानताओं की उनकी अवज्ञापूर्ण निन्दा के लिए याद किया। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के वैष्णव संतचरित्र लेखकों

(अनन्ता दास, नाभादास और प्रियदास) के निर्गुणी संतों जैसे कि कबीर, नामदेव, धन्ना, रैदास आदि को भी पहचान दी। निर्गुणी सन्तों का निडर, प्रति आधिपत्यवादी और समतावादी वैष्णव के रूप में निरूपण सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की गैर–संकीर्ण वैष्णव संस्कृति की एक विशेषता है।

सूरदास और तुलसीदास मुगलकाल के दो प्रमुख वैष्णव कवि हैं जिनका स्थापित वैष्णव सम्प्रदायों के साथ संस्थागत जुड़ाव बहस का विषय है। सूरदास सोलहवीं शताब्दी में हुए और संभवत अकबर के समकालीन थे। उन्हें पारंपरिक रूप से पुष्टिमार्ग से जुड़े आठ ब्रज कवियों *(अष्ट छाप)* के समूह के संस्थापक सदस्य के रूप में माना जाता है। उन्होंने कृष्ण के बाल्यकाल और किशोरावस्था के बारे में कविताओं की रचना की, और लोकप्रिय कृष्णभक्ति कविताओं के एक बड़े संग्रह के लेखन, जिन्हें *सूर–सागर* कहा जाता है, का श्रेय उन्हें दिया जाता है। कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में पुष्टिमार्गी संतचरित्र ने *अष्ट छाप* की धारणा को गढ़ा और स्वयं वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग में सूरदास की दीक्षा करने की कहानी का आविष्कार किया।

तुलसीदास (1532–1623) ने सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अवधी की स्थानीय भाषा में रामभक्ति के प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस की रचना की। वह वैष्णव संतचरित्र लेखक नाभादास के समकालीन थे और मुगल सम्राट अकबर और जहांगीर के शासन काल के दौरान हुए। रामचरितमानस और उनकी अन्य रचनाओं में, तुलसीदास ने भगवान राम के प्रति गहरी और गहन भक्ति व्यक्त की और उन्होंने विविध भक्ति और अध्यात्म विद्या संबंधी प्रवृत्तियों को समेटने और एकीकृत करने का प्रयास किया। रामानंदियों के साथ तुलसीदास का संबंध एक विवादस्पद मुद्दा है और आधुनिक विद्वानों ने उन्हें मुगल काल के किसी भी स्थापित वैष्णव श्रेणी से संबंधित करना आसान नहीं माना है। भक्ति काल के शुरूआती सत्रहवीं शताब्दी के लेखक नाभादास, जो स्वयं रामानंदी तपस्वी थे, तुलसीदास को रामानंदियों की जमात में शामिल नहीं करते हैं। उन्होंने तुलसीदास को ''कलियुग में बाल्मिकि का अवतार'' कहा और सुझाव दिया कि वह एक स्वतंत्र वैष्णव थे। नाभादास द्वारा तुलसीदास के चित्रण को मानते हुए कुछ आधुनिक विद्वानों ने सुझाव दिया कि वह रामानन्दी नहीं थे। दूसरी ओर, दादुपंथी संत चरित्रकार, राघवदास, जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में अपने *भक्तमाल* की रचना की, ने तुलसीदास को रामानंदियों में और रामानन्द के माध्यम से रामानुजियों में रखा। रामानंदियों ने स्पष्ट रूप से सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से उन्हें अपने में से एक के रूप में अपनाना शुरू कर दिया था। उनके विचारों और दर्शन ने बाद के काल में रामानंदी धर्मशास्त्र के गठन और रामानंदी श्रेणी के निर्माण पर एक शक्तिशाली प्रभाव डाला।

11.4.8 मुगलकाल की महिला वैष्णव भक्त

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के अधिकांश वैष्णव उपदेशकों, कवियों और संतचरित्र लेखकों के दृष्टिकोण पितृसत्ता में निहित थे। अपनी रचनाओं और उक्तियों में, उन्होंने आदर्श वैष्णव महिलाओं की जो छवि बनाई वह जेन्डर पदानुक्रम और महिलाओं की अधीनता पर आधारित थीं। हालांकि, इन सीमाओं के बावजूद, मुगल काल के वैष्णव भक्ति समुदायों ने वैष्णव महिलाओं को अपनी भक्ति भावनाओं को व्यक्त करने और धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए काफी स्थान और अवसर प्रदान किये। यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि महिला भक्त शुरू से ही रामानन्द के अनुयायियों के समुदाय का एक अभिन्न अंग थी। अपने *भक्तकाल* में, नाभादास ने विभिन्न सामाजिक समूहों से संबंधित बड़ी संख्या में महिला भक्तों

के नामों का उल्लेख किया है और वैष्णव भक्ति के विकास में उनके योगदान की प्रशंसा की है। *भक्तमाल* और ब्रज साहित्य में वर्णित अनेक महिला भक्त संत निम्न जाति समूहों से थी, लेकिन उन्हें आदर्श वैष्णव के रूप में चित्रित किया गया हैं, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के वैष्णव संतचरित्र लेखकों ने मीराबाई और कई अन्य महिला भक्तों की भक्ति उपलब्धियों का महिमा मंडन किया और सामाजिक अवज्ञा और पितृसत्तात्मक मानदंडों के उल्लंघन के उनके कृत्यों को मंजूरी दी। पुष्टिमार्गी और गौड़िय जैसे संकीर्ण वैष्णव श्रेणियां मीराबाई की कृष्णभक्ति के गहरे भावनात्मक और सामाजिक रूप से विध्वसंक स्वरूप की सराहना करने में विफल रही और कभी–कभी उनके प्रति उदासीनता और यहाँ तक कि शत्रुता भी दिखाई। लेकिन, दूसरी ओर नाभादास और प्रियदास जैसे उदारवादी वैष्णव संतचरित्र लेखक उनके प्रति सहानुभूति रखते थे और उन्हें एक सताये हुए वैष्णव भक्त के रूप में चित्रित किया। वे कृष्ण भक्ति को बनाए रखने के लिए पितृसत्तात्मक प्रतिबन्धों और पारिवारिक मान–सम्मान की धारणाओं को त्यागने के लिए उनकी प्रशंसा करते हैं।

11.5 अठारहवीं शताब्दी में वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों का रूपान्तरण

अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन और विघटन और दिल्ली–आगरा क्षेत्र में राजनीतिक अनिश्चितता और अशांति के मौजूदा माहौल के साथ ब्रज क्षेत्र के वैष्णव समुदाय के नेताओं ने अपने देवताओं और मन्दिरों को पुनर्स्थापित करने के लिए राजपूत राज्यों में अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थानों की तलाश शुरू कर दी। अठारहवीं शताब्दी के राजपूत राजाओं ने स्वयं को एक नई स्थिति में पाया, क्योंकि मुगल साम्राज्य के साथ उनके राजनीतिक और वैचारिक संबंध कमजोर हो गये थे। उन्होंने या तो वैष्णव सम्प्रदायों के साथ पहले से मौजूद संबंधों को मजबूत किया या अधिक व्यापक संरक्षण संजाल के माध्यम से वैष्णव प्रतिष्ठानों के साथ नये संबंध बनाए। इस तरह की पहल ने राजपूत शासकों को अठारहवीं शताब्दी के बदलते राजनीतिक परिवेश में वैधता के नये स्रोतों की तलाश करने का अवसर प्रदान किया। जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, पुष्टमार्गियों ने सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दौरान मेवाड़ में अपनी शाखाएं स्थापित करना शुरू कर दिया था। पुष्टिमार्गी वैष्णवों ने राजस्थान के विभिन्न राजपूत राज्यों में श्रीनाथ जी की सात छवियों (स्वरूपों) की गद्दियों की स्थापना की। मेवाड़ के सिसोदिया राज्य में नाथद्वारा श्रीनाथ जी की मूल छवि का नया घर बन गया और जल्द ही तीर्थ यात्रा के एक लोकप्रिय केन्द्र के रूप में उभरा। राजपूत शासक पुष्टिमार्गी पंथ की लोकप्रियता, प्रभाव और उत्तर और पश्चिमी भारत के समृद्ध व्यापारिक समूहों के साथ घनिष्ट धार्मिक और कुछ मामलों में वित्तीय संबंध भी राजपूत राज्यों और वैष्णव प्रतिष्ठानों के बीच स्थापित किये गये थे। पुष्टिमार्गियों ने विशेष रूप से, बहुत अधिक राजनैतिक और धार्मिक प्रभाव का प्रयोग किया।

आमेर–जयपुर राज्य के कछवाहा राजपूत शासक सवाई जय सिंह (शासनकाल 1700–1743) ने भक्ति आधारित वैष्णववाद को राज्य की वैचारिक संरचना में एकीकृत करने में सक्रिय भूमिका निभाई। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कछवाहों का अकबर के शासन काल से गाल्टा और रायवास के रामानंदी मठों और वृन्दावन के गौड़िय सम्प्रदाय और इसके मुख्य मन्दिर, गोविन्द–देवजी के मन्दिर के साथ एक विशेष संबंध था।

1633 में, मुगल बादशाह ने कछवाहों को गोविन्द–देव जी का संरक्षक बनाया। बाद में 1670 में, ब्रज क्षेत्र में मन्दिरों को ध्वस्त करने के औरंगजेब के आदेश के बाद, गोविन्द–देवजी,

उनकी सहचरी, राधा, और वृन्दावन की रक्षक देवी वृन्दा देवी की प्रतिमाओं को वृन्दावन से हटाकर कछवाहा क्षेत्र में लाया गया था। फिर बाद में, वृन्दादेवी की प्रतिमा को छोड़कर इन प्रतिमाओं को अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में सवाई जय सिंह द्वारा आमेर में स्थानांतरित कर दिया गया। अन्त में, गोविन्द–देवजी और राधा की प्रतिमाओं को नई राजधानी जयपुर के शाही महल में एक नये मन्दिर में स्थापित किया गया। गोविन्द–देवजी कछवाहा राज्य के राज्य देवता बन गये। हालांकि सवाई जय सिंह ने पूजा के अन्य रूपों को संरक्षण देना जारी रखा, लेकिन निश्चित रूप से उनका झुकाव गौड़िय सम्प्रदाय के प्रति अधिक था। वृन्दावन और नवद्वीप (बंगाल में) के गौड़िय धर्मशास्त्रियों और बुद्धिजीवियों ने एक रूढ़िवादी भक्ति आधारित वैष्णववाद के सिद्धांतों को, जो वैदिक और शास्त्रीय मानको पर आधारित थे, व्यक्त करने और स्पष्ट करने के आहवान पर प्रतिक्रिया दी।

1720 और 1726 के बीच आगरा के मुगल सूबे के शक्तिशाली गवर्नर के रूप में, सवाई जय सिंह ने ब्रज क्षेत्र पर भी नियंत्रण किया जो अनेक वैष्णव प्रतिष्ठानों, मन्दिरों और समुदायों का स्थल था। यह शैव और वैष्णव तपस्वियों के बीच तीव्र टकराव की अवधि भी थी, और जय सिंह ने न केवल वैष्णव पूजा के रूपों को संरक्षण देने में बल्कि वैष्णव सम्प्रदायों के बीच मतभेदों को समाप्त करने में भी गहरी रुचि दिखाई। उन्होंने एक रुढ़िवादी और शास्त्रीय वैष्णववाद की स्थापना करने का भी लक्ष्य रखा, जो सभी चार वैष्णव सम्प्रदायों द्वारा स्वीकृत हो।

सवाई जय सिंह ने चार वैष्णव सम्प्रदायों (चतुह सम्प्रदाय) की अवधारणा को आधिकारिक मंजूरी दी जो सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों से अस्तित्व में थे। वैष्णव सम्प्रदायों के बीच मतभेदों को सुलझाने के लिए सम्मेलनों का आयोजन किया गया। सवाई जय सिंह ने वृन्दावन के भक्ति आधारित सम्प्रदायों के नेताओं को निर्देश दिया कि वे या तो चार वैष्णव सम्प्रदायों में से एक में शामिल हो या शास्त्रीय सिद्धांतों और मान्यता के अनुसार अपने स्वतंत्र अस्तित्व को साबित करें। हरिदासियों और राधावल्लभियों ने स्वतंत्र सम्प्रदायों का गठन किया और चार सम्प्रदायों में से किसी में भी शामिल नहीं हुए थे। सवाई जयसिंह के निर्देशों के विरोध में, स्वामी हरिदास के तपस्वी अनुयायियों ने स्वयं को निम्बार्क सम्प्रदाय से जोड़ा, जबकि उनके गृहस्थ अनुयायी विष्णु–स्वामी सम्प्रदाय का हिस्सा बन गये। राधावल्लभी चार सम्प्रदायों में से किसी का हिस्सा नहीं बने और इसलिए उन्हें सवाई जयसिंह द्वारा सताया गया।

अठारहवीं शताब्दी के दौरान, सशस्त्र शैवसन्यासियों और वैष्णव बैरागी तपस्वियों के बीच साम्प्रदायिक टकराव और भी अधिक हिंसक और व्यापक हो गया। अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में दसनामी सन्यासियों ने भगवान राम के जन्म दिन पर अयोध्या पर कब्जा कर लिया और रामानन्दी बैरागियों को वहां से निकाल दिया। चार वैष्णव सम्प्रदायों (चतुह सम्प्रदायों) के नेताओं ने 1713 में गाल्टा मठ में एक सम्मेलन आयोजित किया और बैरागियों को हथियार बन्द करने और शैव सन्यासियों के खतरे का मुकाबला करने के लिए प्रशिक्षित सैन्य दल बनाने का निर्णय लिया। कुछ बैरागी समूह सत्रहवीं शताब्दी से सशस्त्र संघर्षों में भाग ले रहे थे और गाल्टा सम्मेलन में शैव तपस्वियों के खिलाफ रामानंदी बैरागियों द्वारा हथियारों के इस्तेमाल पर वैधता की मोहर लगा दी। कृष्ण भक्ति आधारित सम्प्रदाय वैष्णवों को शैव तपस्यिों के खिलाफ लड़ाई में हथियार बन्द करने के निर्णय के पक्ष में थे, लेकिन उनमें से अधिकांश विशेष रूप से गौड़िय और पुष्टिमार्गी सशस्त्र टकरावों में सीधे भाग लेने के लिए अनिच्छुक थे। उन्होंने राजपूत शासक वर्गों और समाज के समृद्ध व्यापारी वर्गों का संरक्षण प्राप्त करने में अधिक रूचि दिखाई।

एक अन्य बदलाव अठारहवीं शताब्दी के दौरान रामानंदी श्रेणी में रूढ़िवादी प्रवृत्तियों का विकास था। आंशिक रूप से श्रेणी में आंतरिक विकासों के कारण और आंशिक रूप से सवाई जय सिंह द्वारा अपने क्षेत्र में सामाजिक रूप से गैर–परंपरावादी धार्मिक समुदायों पर डाले गये दबाव के कारण, रामानंदियों के ब्राह्मणवादी नेतृत्व ने कबीर और अन्य निम्न जाति के संतों को बाहर करना शुरू कर दिया। भिन्न जाति समूहों से शिष्यों को श्रेणी में भर्ती किया जाता रहा, लेकिन जिन्होंने कबीर, रैदास से अपनी आध्यात्मिक वंशावली को और अन्य 'अस्पृश्य' और रामानंद की महिला शिष्यों से जोड़कर देखा उनको रामानंदी श्रेणी से बाहर रखा गया। इन आंतरिक उपायों और सवाई जय सिंह के सुधारों का परिणाम रामानंदी सम्प्रदायों में जाति और जेन्डर की सीमाओं और पदानुक्रम को कठोर बनाना था।

मोटे तौर पर अठारहवीं शताब्दी के मध्य से, अयोध्या भी राम केन्द्रित वैष्णववाद के केन्द्र के रूप में प्रमुखता से उभरने लगी और इस प्रक्रिया में रामानंदियों ने एक केंद्रीय भूमिका निभाई। फैजाबाद में इसकी राजधानी के साथ अवध नवाबी राज्य के गठन ने भी अयोध्या की तीर्थ स्थल के रूप में बनती प्रतिष्ठा में योगदान दिया। अवध के नवाबों और उनके हिन्दू कुलीनों ने अयोध्या में मन्दिर निर्माण गतिविधियों को संरक्षण दिया। लेकिन दसनामी शैव भिक्षु और उनके सशस्त्र दल बैरागियों और उनके मठों और प्रभाव के केन्द्रों के लिए एक गंभीर खतरा बने रहे। वैष्णव तीर्थ स्थलों पर शैव श्रेणी के सशस्त्र तपस्वियों द्वारा बढ़ते हमले का सामना करने के लिए, जयपुर के एक राजपूत रामानंदी भिक्षु बालानंद ने वृन्दावन में सभी चार वैष्णव सम्प्रदायों की एक बैठक बुलाई। वैष्णव संगठनों को एक सैन्य उन्मुखीकरण देने का निर्णय लिया गया। कृष्णवादी वैष्णवों ने ऐसे संगठनों का हिस्सा बनने का चयन नहीं किया, लेकिन रामानंदियों ने स्वयं को अनी (सेना) और अखाड़ा (कुश्ती केन्द्र) के साथ संगठित करना शुरू कर दिया। इसी कारण स्वामी बालानंद को वैष्णववाद को पुनर्जीवित का श्रेय दिया जाता है। सशस्त्र रामानंद बैरागी, जो अभी तक केवल एक औपचारिक संगठन में अस्पष्ट रूप से जुड़े हुए थे, वह अब सैनिकों की एक पदानुक्रमित प्रणाली का हिस्सा बन गये। अनेक समान रामानंदी, ज्यादातर राजस्थान से, अठारहवीं शताब्दी के मध्य से अयोध्या आए और सैन्य प्रशिक्षण केन्द्र या अखाड़े स्थापित करना शुरू किया हैं।

बोध प्रश्न 2

1) ब्रज क्षेत्र में कृष्ण–भक्ति स्थलों की खोज पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा कीजिए।

क) गौड़िय सम्प्रदाय

ख) पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय

ग) निम्बार्क सम्प्रदाय

3) अठारहवीं शताब्दी में वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय के रूपान्तरण पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

11.6 सारांश

इस इकाई में, हमने पढ़ा कि मुगल भारत में सोलहवीं और अठाहरवीं शताब्दी के बीच वैष्णव भक्ति आन्दोलन कैसे विकसित हुआ और फला–फूला। ब्रज क्षेत्र में कृष्ण भक्ति स्थलों की खोज की प्रक्रिया जो पहले से चल रही थी, मुगल शासन के दौरान बदले हुए राजनैतिक परिदृश्य के कारण ठोस आकार ले पाती हैं, हालाँकि, इसका परिणाम और होड़ के रूप में हुआ। इस अवधि में वैष्णव भक्ति के व्यापक ढाँचे के अन्तर्गत विभिन्न सम्प्रदायों का प्रसार भी देखा गया। पूजा के अपने विविध रूपों के माध्यम से, विविध धार्मिक परंपराओं के स्थान जुड़ाव, और अन्त में, अपने धार्मिक विश्व दृष्टिकोण को फैलाने और उसके प्रभाव को प्रसारित करने के लिए रणनीतियों की एक व्यापक श्रृंखला को अपनाने के माध्यम से वैष्णव समुदाय महत्पूर्ण ऐतिहासिक कर्त्ताओं के रूप में उभरने में सक्षम हए। विभिन्न वैष्णव श्रेणियों के विचार अभ्यास, और गतिविधियों और महिलाओं सहित व्यक्तिगत वैष्णो भक्ति ने समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस इकाई में वैष्णव भक्ति के मध्यकालीन और प्रारंभिक और आधुनिक राज्य व्यवस्थाओं में एकीकरण की प्रक्रिया के साथ–साथ विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा अपने प्रभाव के क्षेत्रों का विस्तार करने के प्रयासों के बारे में विस्तार से बताया गया।

11.7 शब्दावली

परचई : व्यक्तिगत वैष्णव और सन्त भक्तों के जवीन और कार्यो के बारे में संतचरित्र वाले वृत्तांत। परचई साहित्य का सबसे अच्छा उदाहरण सोलहवीं शताबदी के अन्त या सत्रहवीं शताब्दी की शुरूआत में वैष्णव संतचरित्र लेखक अनन्त दास द्वारा रचित वृंत्तात है।

संत चरित्र : संतो और अन्य करिश्माई व्यक्तित्वों के प्रसिद्ध वृतांत जो अनके अनुयायियों द्वारा लिखे गये। यह बैरागी, वैष्णव साधु और तपस्वियों के बारे में है।

बैरागी : वैष्णव भिक्षुक व योगी

वाचन : कन्नड में लोकाप्रिय भक्ति गीत।

द्वैतअद्वैत : द्वैतवाद–सह–अद्वैतवाद।

पुष्टिमार्ग : इसका अर्थ है 'अनुग्रह का मार्ग'। यह बल्लभाचार्य के अनुयायीयों के समुदाय का नाम है।

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1) भाग 11.2 देखें।

2) भाग 11.3 देखें।

बोध प्रश्न–2

1) उपभाग 11.4.2 देखें।

2) क) उपभाग 11.4.3 देखें।

   ख) उपभाग 11.4.4 देखें।

   ग) उपभाग 11.4.5 देखें।

3) भाग 11.5 देखें।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

David N. Lorenzen, ed., 2000. *Religious Movements in South Asia*, Delhi: Oxford University Press.

John Stratton Hawley. 2005. *A Storm of Songs, India and the Idea of the BhaktiMovement*,Cambridge, Massachusetts: Harvard University Press.

John Stratton Hawley. 2005. *Three Bhakti Voices: Mirabai, Surdas and Kabir in their Times and Ours*, Delhi:

Charlotte Vaudeville. 1996. "Braj: Lost and Found" in idem. *Myths, Saints and Legends in Medieval India*, Delhi, Oxford University Press, pp. 47-71.

Irfan Habib and Tarapad Mukherjee. 2020. *BrajBhum in Mughal times: The State, Peasants and Gosa'ins*, Delhi: Primus Books.

Monika Horstmann (in collaboration with Heike Bill). 1999. *In Favour of Govindevji: Historical Documents relating to a deity of Vridaban and Eastern Rajasthan*, Delhi: Manohar.

Monika Horstmann. 2011. "Theology and statecraft", in Rosalind O'Hanlonand David Washbrook, eds., *Religious Cultures in Early Modern India*, Delhi; Routledge, pp. 75-104.

William Pinch. 2006. *Warrior Ascetics and Indian Empires*, Cambridge: Cambridge University Press.

Rameshwar Prasad Bahuguna. 2009. "Beyond Theological Differences: Sant-Vaishnava Interaction in Medieval India", *Indian Historical Review*, vol.36, no.1, pp.54-79.